Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 1, January-2019, ISSN 2230-7540

उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती के उपन्यासों में आधुनिक नारी का संघर्ष

Amit Chahal*

Research Scholar, Department of Hindi, Maharishi Dayanand University, Rohtak

सार – ***भारत में विविध समस्याओं और कुप्रथाओं ने नारी-जाति को बड़ी हीनावस्था में पहुँचा दिया है। पर्दा प्रथा के कारण नारी घर में बन्दिनी बना दी गई। दहेज की समस्या ने पुत्री के जन्म को ही अप्रिय बना दिया। बाल-विवाह से विधवा समस्या और वेश्या समस्याओं का जन्म हुआ। विभिन्न प्रकार की समस्याओं के अभिशाप को लादने के कारण ही समाज में स्त्री की स्थिति बहुत शोचनीय हो गयी है। यह कहना बिलकुल सही है कि मध्यवर्ग में जो नारी घर की प्रतिष्ठा है। उसे अपनी इच्छाओं और आशाओं का गला घोटना पड़ता है। यों भी कहा जा सकता है कि महिलाओं के साथ समस्याओं का जुड़ा रहना उनकी नियति-सी बन गई है। जब वह घर में कैद थीं तब भी उसको घेरे अनेक समस्याएँ थी।***

----------X----------

मनुष्य की अनेक आवश्यकतायें होती है जैसे शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक। इन अनन्त आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन अत्यन्त सीमित होते हैं। अतएव आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होड़ लगाने लगती है, इससे प्रतिद्वन्द्वता प्रारंभ होती है। संघर्ष उसी स्थिति में उत्पन्न होता है जब दो परस्पर विरोधी इच्छाएँ एक साथ सामने आती है जबकि उनमें से केवल एक की पूर्ती संभव है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के अनसार "संघर्ष का नाम ही जीवन है मनुष्य संघर्ष करता हैं, जीन के लिए और उनके हित के लिए, जिनके साथ उसका मानवीय नाता है। अपने भौतिक हितों की पूर्ति के लिए वह समाज से संघर्ष करता है, और अपने आप को विपथगामी होने से रोकने के लिए स्वयं संघर्ष करता है। मनुष्य को संघर्ष में विजयी बनने के लिए सामाजिक बल अथवा सामाजिक संगठन का आश्रय लेना पड़ता है।"[1] कुछ परिस्थितियों में संघर्ष के कारण अपने सामथ्र्य पर भी निर्भर है। सामान्यतः इच्छाओं का संघर्ष चार परिस्थितियों में उत्पन्न होता है। एक है मनुष्य के भौतिक वातावरण की सुविधा-असुविधा। दूसरा मनुष्य के जन्मजात् या शारीरिक क्रियाएँ। तीसरा मनुष्य के मनोवैज्ञानिक गठन की क्लिप्तता। चौथा मनुष्य का सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण का संघर्ष। इनमें से एक या एक से अधिक कारणों के संयोग से संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। संघर्ष की स्थिति तनाव पूर्ण होती है जो अप्रिय है। इसका निराकरण शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए। फ्रायड के अनुसार जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त द्वन्द्वों का प्रतिफलन है।

आज की नारी अनेक प्रकार के संघर्षों से जूझती है। पारिवारिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार का संघर्ष, दहेज और तलाक के बारे में होने वाले संघर्ष, कामकाजी महिलाओं का संघर्ष आदि। गहराई से देखा जाये तो स्त्री की केवल अपनी ऐसी संघर्ष या समस्या नहीं है। उसके हरे संघर्ष का जड़ धीरे-धीरे बनते आये समाज की रचना में गहरी पैठी हुई हैं। इसलिए स्त्री के संघर्ष या तनाव का समाधान केवल स्त्रियों के द्वारा करना एकांगी है। क्योंकि इस विशाल समाज में स्त्री एक कड़ी है। स्त्री की हर एक समस्या अंत में समाज की समस्या है। हमें स्त्री-पुरुष सहजीवन सहज, अनन्दमय और परस्पर पूरक बने, इसका समाधान खोजना है। हमें परस्पर सहयोग पर आधारित संतुलित परिवार बनाने का साधन खोजना हैं।

स्त्री अपने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त नहीं होती है। यहीं से उसके अस्वतन्त्रता का आरंभ होता है। इसे पोषित करने वाले अनेक कार्य समाजवादी कहे जाने वाले समाजों में मिलते हैं। इसी कारण परिवार, शैक्षिक संस्थाएँ और संचार माध्यम आदि स्त्री-संबन्धी अपनी पारस्परिक मान्यता को हीं बढ़ावा देते रहते हैं। तमाम प्रकार की प्रगतिशील दृष्टियों के बावजूद ये स्त्री को परोक्षतः कटघरे में पाना चाहते हैं। जिसे तोड़ना आसान नहीं है। ''आज के समाज में स्त्री की भी जो कल्पना की जा रही है वह पहले की पत्नी से बहुत कुछ भिन्न है। समय

www.ignited.in

परिवर्तन के साथ-साथ वस्तुओं के मूल्य में भी परिवर्तन हो जाता है।" [2]

नारी-जीवन को प्रधानता देते हुए उन्होंने 'पंचपन खंभेलालदीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका और 'शेषयात्रा' शीर्षक उपन्यासों का सृजन किया है। उनके उपन्यासों में महानगरीय जीवन के संत्रास और विदेश में बसे पति के साथ जीवन-यापन करने वाली भारतीय लड़की के सुख-दुःख को बड़ी गहराई से चित्रित किया है। उनके अमरीका प्रवास के सूक्ष्म-निरीक्षण ने इन चित्रों को सजीव बनाया है। डॉ. उषा प्रियवंदा के शब्दों में "आज का युगीन यथार्थ भी यही है कि ज्यों-ज्यों आदमी के पास भौतिक सुख-सुविधाएँ बढ़ रही हैं, त्यों त्यों उसके मन का सुख, उसकी आत्मा की शांति विलीन होती जा रही है। आदमी की यही उदासी, ऊब, अकेलापन और घुटन संवेदनशील कथा लेखिका उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में बड़ी भावप्रवण शैली में व्यक्त हुई हैं।" [13]

उषा जी के उपन्यास 'पचपनखंभे लाल दीवारें' की नायिका सुषमा आधुनिक नारी के आत्मसंघर्ष को प्रतिनिधित्व करती है। वह एक सुन्दर शिक्षित नारी है। वह कालेज में एक महत्वपूर्ण पद को सम्हाली है। किन्तु अकेलेपन की अनुभूति उसे व्यथित करती है। सुषमा के चारों तरफ दीवारें हैं। दायित्व की, परिवार की, पद एवं तज्जन्य गरिमा की और शायद भीतरी कुंठा की भी। उसको स्वयं न चाहते हुए भी सारी जिम्मेदारियों को वहन करना पड़ता है। उसके जीवन में जो कुछ मिल रहा है उन सब को वह स्वीकार नहीं कर पाती। जीवन उसे नीरस, अर्थहीन प्रतीत होने लगती है और अजनबीपन का बोध उसकी चेतना को जकड़ती है। इस प्रकार सुषमा पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह के लिए संघर्षशील रहती हैं। इस निराशापूर्ण जीवन से सुषमा अपनी दोस्त मीनाक्षी से कहती हैं "आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी।

उषाप्रियंवदा के उपन्यासों में आधुनिक नारी के मन में होने वाले आत्मसंघर्ष का सच्चा चित्रण हमको मिलता है। उषाजी के दो उपन्यासों - 'पचपन खभे लाल दीवारें 'रुकोगी नहीं राधिका' - में नारी के अस्तित्व की ओर संकेत है और 'शेषयात्रा में नारी जीवन की त्रासदस्थिति का संघर्ष है। तीनों उपन्यासों की नायिकाएँ सुषमा, राधिका और अनु मध्यवर्ग की नरियाँ हैं। परिवारों के बीच ये तीनों नायिकाएँ अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए अपने स्वतंत्र अस्तित्व की खोज में टूटती और बिखरती हुई अनेक संघर्षों का सामना करती हैं। उपन्यासकार उषाप्रियंवदा की सभ्यता पूरी तरह भारतीय है। इसलिए आदर्शों के बीच यथार्थ का घुटता हुआ दम उनके उपन्यासों में दीख पड़ता है। उनकी जीवन दृष्टि व्यक्तिवादी है। क्योंकि उन्होंने आधुनिक नारी की दुविधा को, उसके कटेपन, अकेलापन और अजनबीपन को हमारे सामने खोलकर दिखाया है। अतः उनकी रचनाओं में आधुनिकताबोध उजागर होता है। 'नारी के अंतर्मन का स्पर्श कर उसकी मानसिकता एवं कुण्ठा की वाणी प्रदान कर महिला लेखिकाओं ने आज के समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या को उजागर किया है। इस संदर्भ में उषाप्रियंवदा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[4]

भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में पिता की अनुपस्थिति में घर की जिम्मेदारी मुख्य रूप से पुत्र पर आ पड़ती है। घर की आर्थिक अवस्था शोचनीय होने पर भी पुत्र ही पिता का सहायक बनता है। लेकिन बदलती परिस्थितियों ने इस धारणा में बदलाव का आग्रह किया है। आधुनिक परिवार में बेटे-बेटी का असमानता का भाव कमजोर पड़ने लगा है। घर की आर्थिक स्थिति का दायित्व एक ही सदस्य पर नहीं है। बेटे के साथ बेटी भी समस्याओं का भागीदार है। विशेष कर ऐसी स्थिति में जब घर में कोई पुरुष जिम्मेदारी संभालने में असमर्थ हो, लड़की को परंपरागत मूल्य त्यागकर नयी भूमिका निभानी पड़ती है। इस उपन्यास में उस परिवार का सबसे बड़ी लड़की है। सुषमा। घर में माँ का शासन ही चलता है। पिता पक्षाघात से पीड़ित है। इसलिए उस परिवार की सारी जिम्मेदारी मुख्य रूप से सुषमा पर आ पड़ती है। उसके दो बहनें और दो भाई हैं। इन सबकी पढाई, उसके भविष्य का उत्तरदायित्व सुषमा पर है। वह कहती है "मैं जो करती हूँ, कर्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूँ। मेरा तो मन होता है कि मेरे पास अगर और कुछ होता तो और भी करती।"[5] वह अविवाहित बनकर जीती है। उसके मन में न तो प्रेमी की आकांक्षा थी और न पति की। वह पारिवारिक दायित्व के कारण विवाह नहीं करती। वह अपनी प्रमी नील से कहती है "पहली बात तो नील यह है कि मेरी बहुत जिम्मेदारियाँ है। तुमसे तो कुछ भी छिपा नहीं है। पक्षाघात से पीड़ित बाबु, दो बहनें और भाई, सब मुझे ही करना है।"[6]

इस प्रकार यह उपन्यास अविवाहिता अध्यापिका सुषमा के जीवन की कुंठाओं और घुटन की कहानी है। इस में आधुनिक समाज के नारी की संपूर्ण मनोव्यथा को व्यक्त करने में लेखिका सफल हुई है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' में कृष्णा सोबती ने बलात्कार से पीडित एक नारी के जीवन के आत्मसंघर्ष का सजीव चित्रण किया है। रत्ती या रतिका अविवाहिता नारी है जिसके जीवन में अनेक पुरुष आते हैं लेकिन बचपन का बलात्कार उसके जीवन को अभिशप्त बना दिया था और वह जीवन भर अपने ठंण्डेपन से

विद्रोह करती है। उसका विद्रोह पुरुष से मात्र नहीं अपनी मानसिक ग्रन्थी से भी है। पुरुष का संपर्क और साहचर्य वह सहजरूप से चाहती है लेकिन अपनी हीनता का फायदा उठाने का अवसर किसी को नहीं देती है। किसी ने भी रत्ती को एक व्यक्ति रूप में नहीं पहचाया। डा. शीलप्रभावर्मा के शब्दों में "इस वृत्ति में जब एक नारी की असफल संभोगों का चित्रण उपन्यासकार के साहस परिचय देता है। अंत में रत्ती के जीवन में दिवाकर आता है जो उसे संपर्णता देता है।"[7] रत्ती स्वयं कहती है वह इस समाज को और स्वयं अपने को नफरतकरती है। "रती ने बेबसी से रेलिंग पर माथा झुका दिया। इस लड़की को, इस लड़की की एक बार भी समूची औरत बनने क्यों नहीं दिया? क्यों?"[8] अतीत की दुर्घटना से उत्पन्न मानसिक स्थिति के कारण वह इस प्रकार चिन्ता करती है। वह सोचती है वह फीकी है। एक फीकी औरत एक लड़की जो कभी लड़की नहीं थी। एक औरत जो कभी औरत नहीं थी।" रती जगन्धर के कमरे जाते समय उसकी प्रेमिका रीता गुस्से से चली जाती है। जगन्धर समय का फायदा उठाना चाहता है। वह रत्ती को घेर लिया। रत्ती ने अपने को अलग कर लिया और सूचित किया है कि वह केवल उसके मित्र है। रत्ती को लेकर रंजन और रोहित झगड़ा करते हैं तो वह कहती है ये लोग रत्ती का शरीर मात्र चाहता है। इसलिए इन लोगों के प्रति उसके मन में कोई लगाव नहीं हैं।

"मित्रो मरजानी' की नायिका मित्रो निर्भीकता का प्रदर्शन करने वाली एक साधारण नारी है। वह पति से प्यार करती है और उसमें माँ बनने की अदम्य इच्छा भी है। वह वेश्या पुत्री होने के कारण सामाजिक अपमान झेलती है। भरे-पूरे परिवार की बिचली बहु मित्रों सरदारीलाल की पत्नी है। उसका बचपन ऐसी जगह बीता है जहाँ वासना की तृप्ति नहीं होती। फलतः सरदारीलाल और मित्रों में सामंजस्य नहीं हो पाता। उसकी माँ तक उसे पतन के रास्ते पर ले जाने से नहीं चूकती। ऐसे वक्त पर मित्रों ही सावधान होकर अपना सर्वनाश से बचती हैं। "मित्रों ने सिरहाने पर सिर रखा और आँखें मींच अपने को समझाया - मित्रो रानी! चिन्ता-फिकर तेरे बैरियों को! जिस घडलेवाले ने तुझे घड दुनिया का सुख लूटने को भेजा है, वही जहान का वाली तेरी फिकर भी करेगा।"[9] पारिवारिक घुटन के दृश्य हमें बहुत कुछ कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में देखते हैं। नायिका मित्रो-पति के संसर्ग से अप्रसन्न बनी रहती है साथ ही वह उस ओर प्रेरित हो देह तृप्ति के निमित्त साधन भी चाहती है। उस कारण उसका व्यवहार असंयत जान पड़ता हैं। इसलिए मित्रों चिढ़चढी और मुंहफर रहती हैं। काम की अभुक्ति उसे वाचाल बनाती है। अपनी जेठानी से कहतीं है, "जेठानी मेरे जेठ से कह रखना जवा तक मित्रों के पास यह इलाही ताकत है मित्रो मरतीं नहीं।" काम चेतना के दमन के कारण मानसिक रूप से वह रुग्ण हो जाती है और घर के आस-पास के अन्य पुरुषों से अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्ठा करती है। इसके बारे में पूछने पर वह इस तरह जवाब देती है। "सच तो यूँ, जेठजी कि दीन दुनिया बिसरा में मनुष्य की जात से हेस-खेल लेती हूं। झूठ यूँकि खसम का दिया राजपाट छोटे में कोठे पर तो नहीं जा बैठी है।"[10]

इस तरह देखने से जान पड़ता है कि मित्रों के स्वभाव में दिखाई पड़ने वाली अदम्य कामवासना का कारण पति का ठंडापन मात्र नहीं उसके बचपन का वातावरण भी है। उसकी माँ बालो एक बदचलन औरत थी जिसका अनेक पुरुषों से शारीरिक संबध रखना स्वाभाविक था। फ्राइड के मतानुसार बाल्यावस्था में आरंभ होने वाले कामभावना का अतिविकास या अल्पविकास व्यक्ति के आचरण का कारण बन जाता है। मित्रो की अदम्य कामवासना का कारण बचपन का वासनाग्रस्त वातावरण भी है।

'समय सरगम' की नायिका आरण्या को अनेक प्रकार के संघर्षों सहना पड़ता है। आरण्या अकेली औरत है। आरण्या उम्र से बूढी जरूर है लेकिन मन से नहीं। वह अपने जीवन को व्यस्त रखना चाहती हैं। जब कभी मिलती है अकेलापन मृत्यु, पेंशन और पारिवारिक परेशानियों की बातें करने वाली बूढी पीढी के लोगों से वह बिलकुल भिन्न है। वह कहती है "संतुष्ट हैं कि जीवित हैं। आरण्या मृत्यु से डरती नहीं है, बल्कि उसे जीवन के अनिवार्य यथार्थ के रूप में लेती है। वक्त है। अंतिम पडाववाली भूमिका कभी भी पास आ खड़ी हो सकती है। उसे होना है सबकी होती है।"[11]

इस उपन्यास के और एक पात्र है ईशान वह आरण्या के पड़ोसी और मित्र है। दमयंती इशान की दोस्त है। एक दिन आरण्या ने दोनों मित्रों को अपने घर में आमंत्रित किया। दमयंति अपनी जवानी में एक सुन्दर युवति है। पति के मर जाने के बाद वह हमेशा अकेली रहती है। उनको यह अकेलापन एक बोझ के रूप में है। आरण्या से उसने अपने मन की बातें कह डाली।

इस तरह इस उपन्यास में अकेलापन से जिन्दगी में संघर्ष करती हुई नारियों और वृद्धजनों का चित्रण है। यहाँ की नायिका आरण्या एक सशक्त नारी पात्र है। वह जीवन भर अकेली रहती है। सामाजिक, वैयक्तिक और आर्थिक स्तर पर उसने सफल जीवन बिताया। अविवाहित जीवन में उसे निराशा का अनुभव हुआ है।

www.ignited.in

इस उपन्यास में वृद्ध नारियों के जीवन की परेशानियां और मानसिक परिस्थितियों का मार्मिक ग्रामीण और नागरिक परिवेश के अन्तर्गत किया है।

निष्कर्ष

नारी की दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की समाप्ति आज के नवजागरण के युग में एक चुनौती बनकर हमारे सामने खड़ी है। आज का युग स्वतंत्रता और समानता का युग है। फिर भी नारी अपनी दीनावस्था में विविध मानसिक संघर्ष में डूबी हुई है। जागरूक एवं न्याय में विश्वस्त पुरुषों के वर्ग ने नारी के प्रति अपनी सहानुभूति दिखलाई है। उस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने शुभकामनाएँ प्रकट की है फिर भी नारी बन्धन ग्रस्त है। अर्धांगिनी बनीं रहने पर भी नारी को परिवार में पति से आधे अधिकार प्राप्त नहीं है। प्रश्न है कि पुरुष ने नारी को अधिकार क्यों नहीं दिया है नारी ने पुरुष से अधिकार माँगा नहीं है और यदि किसी अवस्था में पुरुष द्वारा दिए गए अधिकारों को नारी अपनी जिम्मेदारी से निभाने में पूर्ण रही या अपूर्ण होकर रह गई? इन प्रश्नों के माध्यम से नारी के स्वभाव का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक रूप से करना अनिवार्य हो जाता है। आधुनिक समाज में नारी ने अपने ऊपर लंबे समय से लगाए गए विवेचना को खंडित किया है। आज हर क्षेत्र में नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है।

आधुनिक युग में देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। अनेक प्राचीन मान्यताएँ टूट गयी और कई नयी मान्यताओं को जीवन में स्थान मिला। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में घटित क्रान्तिकारी परिवर्तनों के प्रभाव ने आधुनिक नारी को भी नयी मानसिकता प्रदान की है। वैयक्तिक, सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्रों में वह पुरुष के समकक्ष होने का दावा करने लगी है। आज की नारी अपनी स्थिति के प्रति सजग हैं। और वह अपना सामर्थ्य पहचानकर आगे बढ़ रही है। इसके फलस्वरूप आज नारी अपने को पुरुष केे समान स्वतन्त्र मानने लगी है और समाज में उसकी अपनी पहचान भी होने लगी है।

यह नारी जीवन से सम्बन्धित सामाजिक स्थिति का एक पहलू मात्र हैं। भारत में संविधान के मुताबिक पुरुष और नारी को समान सामाजिक अधिकार प्राप्त है। लेकिन व्यावहारिक जीवन में नारी आज भी पुरुष से हीन मानी जाती है। जैसे कि मृणाल पांडे ने सूचित किया है "पुरुषत्व की मूल अवधारणा समाज में हमेशा सकारात्मक और केन्द्रीय रहीं है। यानी पुरुष का जन्म एक संपूर्ण मानव ही नहीं, मानवता का सही और आदर्श स्वरूप होना सहज स्वीकृत रहा है। इसके ठीक विपरीत समाज में स्त्रीत्व की मूल अवधारणा नकारात्मक है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दोनों दायरों में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में देखा गया है।" आज भी प्रतिदिन सैकड़ों के तादाद में नारियाँ दहेज के लिए जलाई जाती है, घरों से निर्वासित की जाती है और पुरुष की कामुकता-पूर्ति का साधन बनाई जाती है। आम भारतीय नारी के विषम जीवन को जटिलतर बनाती हुई अनेकानेक कठिनाइयाँ आज भी नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास को अवरुद्ध करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी उपन्यास गाथा, प्रो. शशिभूषण सिंहल, पृ0 80
2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, त्रिभुवनसिंह, पृ0 112
3. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना, डॉ. उषा यादव, पृ0 77
4. साहित्य मंडल पत्रिका, अंक 165, फरवरी-मार्च, 1993
5. पचपन खंभे लाल दीवारें, उषा प्रियंवदा, पृ0 11
6. वही, पृ0 10
7. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ, डॉ. शीला प्रभा वर्मा, पृ0 21
8. सूरजमुखी अंधेरे के, कृष्णा सोबती, पृ0 8
9. मित्रो मर जानी, कृष्णा सोबती, पृ0 20
10. मित्रो मर जानी, कृष्णा सोबती, पृ0 78
11. समय सरगम, कृष्णा सोबती, पृ0 8

Corresponding Author

Amit Chahal*

Research Scholar, Department of Hindi, Maharishi Dayanand University, Rohtak

amitchahal299@gmail.com

www.ignited.in